श्रमण-जीवन में पंचाचार

श्री जशकरण डागा

श्रमण-जीवन के पाँच मुख्य आचार हैं- ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्यचार। आचार्य संघ के प्रमुख होते हैं, अतः वे इन पंचाचारों का पालन करते और करवाते हैं। लेखक ने पंचाचार का भेद-प्रभेद सहित वर्णन कर इनका आचार्य हस्ती में प्रयोगात्मक स्वरूप दिखलाया है। -सम्पादक

अखिल विश्व को शाश्वत सुख-शान्ति का संदेश देने वाली श्रमण संस्कृति का आधार पंच परमेष्ठी हैं। इसमें पाँच पद हैं। प्रथम के दो पद अरिहन्त एवं सिद्ध 'देव-पद' और शेष तीन-आचार्य, उपाध्याय तथा साधु 'गुरु-पद' हैं। वैसे 'गुरु' गरिमा की अपेक्षा विचारें तो अरिहंत-सिद्ध को 'परम गुरु' कहा है और इस प्रकार 'गुरु'में पांचों पद समाहित हो जाते हैं। श्रमण-जीवन से संबंधित आचार्य, उपाध्याय एवं साधु साधक हैं। इनमें आचार्य का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये चतुर्विध संघ को नेतृत्व प्रदान करते हैं।

आचार्य का स्वरूपः-

आवश्यक-निर्युक्ति में कहा है-

''पंचविह आयार, आयरमाणस्स तहा पभासता।
आयारं दंसंत, आयरिया तेण वुच्चंति।।''

-आवश्यकनिर्युक्ति, 994

अर्थात् जो ज्ञानाचार आदि पंचाचार रूप पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं और अन्यों को पालन करवाते हैं, वे आचार्य कहे जाते हैं। आचार-विशुद्धि आचार्य का मौलिक गुण है। अतः जो स्वयं विशुद्ध चारित्रनिष्ठ हैं एवं अपने संघ को विशुद्ध आचार धर्म में स्थिर रखते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं। आगमानुसार आचार्य छत्तीस गुणों से सम्पन्न होते हैं। कहा है-

''पंचिंदिय संवरणो, तह नवविहबंभयेरं गुत्तिधरो।
चउविह कसाय-मुक्को, इह अट्ठारस्स गुणेहि संजुत्तो।।
पंच महव्वयजुत्तो, पंचविहायार पालण-समत्थो।
पंच समिओ तिगुत्तो, इह छत्तीसगुणेहिं गुरु मज्झं।।

अर्थात् जो पांच इन्द्रियों से संवरित हैं, नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य गुप्तियों (बाडें) के धारक हैं, चार कषाय से विरत हैं, पांच महाव्रतों से युक्त हैं, पांच प्रकार के आचार पालने में समर्थ हैं तथा पांच

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समितियों एवं तीन गुप्तियों से संयुक्त हैं, ऐसे इन छत्तीस गुणों से सुशोभित आचार्य होते हैं। **(प्रवचन सारोद्धार, द्वार 64)**।

उपर्युक्त छत्तीस गुणों में भी पंचाचार पालन का विशेष महत्त्व है। जिनशासन की प्रभावना की दृष्टि से ये बड़े उपयोगी हैं। अतः सभी मोक्षमार्ग के अनुयायियों के लिए ये विशेष रूप से जानने एवं समझने योग्य होने से, इनका उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जाता है-

पंचाचार का स्वरूप-

1. मोक्ष के लिए किया जाने वाला ज्ञानादि आसेवन रूप अनुष्ठान विशेष आचार कहा जाता है।
2. आध्यात्मिक गुणवृद्धि के लिए किया जाने वाला आचरण आचार कहलाता है।
3. पूर्व महापुरुषों से आचरित ज्ञानादि आसेवन विधि को आचार कहते हैं।

ये आचार पाँच कहे हैं जो संक्षेप में निम्न प्रकार हैं-

1. ज्ञानाचार-

सम्यक् तत्त्व का ज्ञान कराने के कारणभूत श्रुतज्ञान का आठ दोषों से रहित पठन करना ज्ञानाचार है। ज्ञान के आठ आचार हैं-

''काले, विणये, बहुमाणे, उवहाणे तह ऽणिण्हवणे।
वंजण-अत्थ तदुभये, अट्ठविहो णाणमायारो।।''

(1) **काल-** दिन के और रात्रि के प्रथम और अंतिम चार प्रहर में, कालिक और अन्यकाल में उत्कालिक सूत्र, चौंतीस असज्झाय (अस्वाध्याय) के दोषों का निवारण करके यथोक्त काल में शास्त्र पठन करना।

(2) **विनय-** ज्ञानी की आज्ञानुसार विनयपूर्वक ज्ञान ग्रहण करना। उन्हें आहार, वस्त्र, पात्र, स्थान आदि के द्वारा यथोचित साता पहुँचाना और वे जब शास्त्र सुनावें या वाचनी देवें तब आदर और एकाग्रता के साथ उनके वचनों को 'तह त्ति' कहकर स्वीकार करना। ज्ञानदायक साहित्य आदि को नीचे या अपवित्र स्थान में न रखना तथा समय-समय पर उनकी पलेवणा (प्रमार्जना) करना आदि।

(3) **बहुमान-** गुरु आदि ज्ञानी तथा ज्ञान दाता का बहुत आदर करना और तैंतीस आशातनाओं (गुरु आदि ज्येष्ठों के आगे और बराबर बैठने आदि) का त्याग करना।

(4) **उपधान-** शास्त्र-पठन आरम्भ करने से पहिले और पीछे जो आयम्बिल आदि करने का विधान है, उसकी पालना करना। उसे उपधान तप कहते हैं।

(5) **अनिह्नव-** विद्यादाता (चाहे छोटा या अप्रसिद्ध हो) का नाम नहीं छिपाना और उसके बदले किसी दूसरे बड़े या प्रसिद्ध विद्वान का नाम न लेना। विद्यादाता के गुण या उपकार को नहीं छिपाना।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(6) **व्यञ्जन-** शास्त्र के व्यञ्जन, स्वर, गाथा, अक्षर, पद, अनुस्वार, विसर्ग, लिंग, काल आदि जानकर भली भांति समझकर न्यून, अधिक या विपरीत न बोलना। इस हेतु व्याकरण का ज्ञाता होना चाहिए।

(7) **अर्थ-**शास्त्र का विपरीत अर्थ न करे और न सही अर्थ को छिपावे। अपना मनमाना अर्थ भी न करे।

(8) **तदुभय-** मूल पाठ और अर्थ में विपरीतता न करे। पूर्ण शुद्ध और यथार्थ पढ़े, पढ़ावे, सुने और सुनावे।

2. **दर्शनाचार-** सम्यग् दर्शन की निःशंकित आदि रूप से शुद्ध आराधना करना दर्शनाचार है। इसके भी आठ आचार निम्न प्रकार जानें-

"निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह- थिरीकरणे, वच्छल्ल, पभावणे अट्ठ।।"

(1) **निःशंकित-** अपनी अल्पबुद्धि के कारण शास्त्र की कोई बात समझ में न आवे, तो शास्त्र (जो जिन प्ररूपित है) पर शंका न करे। वीतराग सर्वज्ञप्रभु कभी भी न्यूनाधिक असत्य उपदेश नहीं फरमाते। उन्होंने केवलज्ञान में जैसा वस्तु स्वरूप देखा है, वैसा ही प्ररूपित किया है। इस प्रकार दृढ़ विश्वास रखना उसमें किंचित् भी संशय न करना, निःशंकित आचार कहलाता है।

(2) **निःकांक्षित-** मिथ्यात्वियों के चमत्कार, आडम्बर, एषणाओं की संपूर्ति आदि देख, उनके मत को स्वीकार करने की अभिलाषा न करना और ऐसा भी न कहना कि ऐसा अपने मत में भी होता, तो अच्छा था। कारण कि आत्मा का कल्याण मिथ्या-ढ़ोंग आडम्बरों से नहीं होता, वे तो कर्मबन्ध के हेतु होते हैं। आत्मा का कल्याण तो रत्नत्रय की सम्यग् साधना से ही होगा।

(3) **निर्विचिकित्सा-** धर्म-करणी के फल पर संदेह न करना। जैसे मुझे कार्य करते-करते इतना समय हो गया, फिर भी कोई फल दृष्टिगोचर नहीं हुआ। दूसरे, निर्ग्रंथ, त्यागी, तपस्वी संत-सतियों के मलिन वस्त्र देखकर उनके प्रति घृणा न आने देना।

(4) **अमूढ दृष्टि-** जैसे जौहरी की दृष्टि हीरे और काच के भेद को भली-भांति जानकर हीरे को ग्रहण करती है, वैसे ही तत्त्वज्ञ जिनवाणी को सर्वोत्कृष्ट मान, अन्य मत-मतान्तरों को महत्त्व नहीं देता। उसकी दृढ़ मान्यता होती है कि वाणी तो घणेरी पण वीतराग तुल्य नहीं, इनके सिवाय और चौरासी (या छोरा सी) कहानी है।' इस प्रकार की शुद्ध भेद-दृष्टि रखना अमूढ़ दृष्टि आचार कहलाता है।

(5) **उपवृंहण-** सम्यग् दृष्टि और साधर्मी के थोड़े से भी सद्गुण की हृदय से प्रशंसा करना और वैयावृत्य या सहयोग कर उसके उत्साह को बढ़ाना।

(6) **स्थिरीकरण-** अन्य मतावलम्बियों के संसर्ग से या अन्य किसी भी कारण से कोई धर्म से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विचलित हो गया हो, तो उसे उपदेश देकर या ज्ञानीजनों के संपर्क में लाकर या यथोचित सहायता देकर, साता उपजाकर उसके परिणामों को पुनः धर्म के स्थिर करना, दृढ़ श्रद्धावान बनाना, स्थिरीकरण आचार है।

(7) **वात्सल्य-** जैसे माता अपनी संतान पर प्रीति रखती है, उसी प्रकार स्वधर्मीजनों पर प्रीति रख उन्हें यथा योग्य आवश्यक वस्तुओं से सहायता देकर उनके प्रति वात्सल्य भाव रखना।

(8) **प्रभावना-** जैन धर्म की अपने गुणों से प्रभावना करना एवं धर्म संबंधी अज्ञान को दूर करना प्रभावना आचार है। प्रभावना आठ प्रकार से होती है, यथा-

विद्या, वादी, कथा, शास्त्री, हो निमित्तज्ञ, तपस्वी महान।
कविता करे, प्रगट व्रत लेकर, चमका दे जो धर्म महान।।

अर्थात्- 1. विद्यापारंगत हो, 2. वादी हो, 3. कथा व्याख्याता हो, 4 शास्त्रज्ञ हो, 5. निमित्तज्ञ (कालज्ञ) हो, 6. तपस्वी हो, 7. कवि हो, 8. सबके समक्ष विशेष व्रत धारक हो। इन प्रभावनाओं से सम्यग्दर्शन की पुष्टि और धर्म की प्रभावना होती है। अतएव योग्यतानुसार इनकी पालना करना कराना प्रभावना आचार है।

3. चारित्राचार-

जो क्रोध आदि चार कषायों से अथवा नरक आदि चारों गतियों से आत्मा को बचाकर मोक्ष गति में पहुँचावे वह चारित्राचार है। अतः चारित्र के दोषों से यतनापूर्वक बचकर गुणों को धारण करना चाहिए। चारित्र के आठ आचार हैं-

"पणि हाय-जोग जुत्तो, पंच समिईहिं गुत्तिहिं।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो।।"

(1) **ईर्या समिति-** इसके चार प्रकार हैं- (1) आलम्बन- (रत्नत्रय का आलम्बन रखे), (2) काल- रात्रि में विहार न करे। सूर्यास्त से पूर्व जहाँ भी मकान या वृक्षादि ठहरने योग्य स्थान हो वहीं रह जाय। रात्रि में परठने का प्रसंग हो तो जयणापूर्वक गमनागमन करे। (3) मार्ग- उन्मार्ग (जिसमें सचित्तता हो, दीमक आदि के घर हो) से गमन न करे। (4) यतना- इसके चार भेद हैं- (क) द्रव्य से- नीची दृष्टि रखकर चलना। (ख) क्षेत्र से- देह के बराबर आगे मार्ग देखकर चलना। (ग) काल से- रात्रि में प्रमार्जन कर एवं दिन में देखकर चलना। (घ) भाव से- रास्ता चलते अन्य कार्य जैसे वार्तालाप, पठन, पृच्छना आदि न करे।

(2) **भाषा समिति-** यतना पूर्वक बोलना। इसके भी चार प्रकार हैं- (1) द्रव्य से- क्लेश पैदा करने वाली, कठोर, सावद्य, पीड़ाकारी, कषाय उत्पन्न करने वाली भाषा एवं विकथा न करे। (2) क्षेत्र से- रास्ता चलते न बोले। (3) काल से- प्रहर रात्रि के बाद बुलन्द आवाज में न बोले तथा (4) भाव से- देश काल के अनुकूल सत्य, तथ्य और शुद्ध भाव से बोले।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(3) एषणा समिति- शय्या (स्थानक), आहार, वस्त्र और पात्र निर्दोष ग्रहण करे। इसके भी चार भेद हैं- (1) द्रव्य से-42 तथा 47 दोषों से रहित शय्या आदि वस्तुओं का उपभोग करे। (2) क्षेत्र से- आहार-पानी को दो कोस से आगे ले जाकर न भोगे। (3) काल से- खान-पान आदि पदार्थ प्रथम प्रहर में लाकर चौथे प्रहर में न भोगे। (4) भाव से- संयोजना आदि माण्डले के पाँच दोषों को न लगावे तथा किसी भी वस्तु पर ममत्व न रखे।

(4) आदान-भाण्डमात्र-निक्षेपणा समिति- उपकरणों को यतनापूर्वक ग्रहण करे एवं स्थापित करे। उपकरण दो प्रकार के होते हैं- (1) सदा उपयोग में आने वाले, जैसे रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि। इन्हें 'उग्गहिक' कहते हैं। (2) जो कभी -कभी उपयोग में आवे जैसे पाट, चौकी आदि। इन्हें उपग्रहिक कहते हैं। साधु उपकरण तीन प्रकार के रख सकते हैं- (1) काष्ठ का, (2) तुम्बा का, (3) मिट्टी का। इस समिति के भी चार प्रकार हैं- (1) द्रव्य से- यतनापूर्वक ग्रहण करे एवं करावे। (2) क्षेत्र से- गृहस्थ के घर में रखकर ग्रामानुग्राम विहार न करे। पडिहारी को यथा समय लौटा दे। (3) काल से- प्रातः एवं सायंकाल वस्त्रों, पात्रों और उपकरणों का प्रतिलेखन करे। (4) भाव से- उपकरणों का उपयोग सावधानी एवं विवेक पूर्वक करे।

(5) परिष्ठापनिका समिति- मल, मूत्र, पसीना, वमन, नाक का मैल, कफ, नाखून, बाल, मृतक शरीर आदि अनुपयोगी वस्तुओं को जयणा सहित परठावे। इसके भी चार प्रकार हैं- (1) द्रव्य से- यतनापूर्वक निरवद्य परठने योग्य भूमि पर त्याग करे। (2) क्षेत्र से- क्षेत्र के स्वामी की आज्ञा लेकर, यदि कोई स्वामी न हो तो शक्रेन्द्र जी से आज्ञा लेकर जहाँ किसी प्रकार के क्लेश की संभावना न हो, वहाँ परठावे। (3) काल से- दिन में अच्छी तरह देख-भाल कर निरवद्य भूमि में परठे और रात्रि के समय, दिन में पहले ही देखी हुई भूमि में परठे। (4) भाव से- शुद्ध उपयोग पूर्वक यतना से परठे। जाते समय 'आवस्सहि' शब्द तीन बार बोले। परठते समय (स्वामी की आज्ञा को सूचित करने के लिए) 'अणुजाणह में मिउग्गहं' पद बोले। परठने के बाद 'वोसिरामि' शब्द तीन बार कहे। अपने स्थान पर वापस आने पर 'निस्सही' शब्द तीन बार कहे। फिर इरियावहियं का प्रतिक्रमण कहे।

तीन गुप्तियों का स्वरूपः- मन, वचन एवं काया यह तीन महान् शस्त्र हैं। अतः इन तीनों पर नियंत्रण अत्यावश्यक है।

(6) मनोगुप्ति- संरम्भ, समारंभ और आरंभ, इन तीनों से मन को हटाकर उसे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान में लगाना, मनो-गुप्ति है। मनोगुप्ति से कर्म बंध रुकते हैं और आत्मा में निर्मलता बढ़ती है।

(7) वचनगुप्ति- संरंभ आदि सावद्य का प्रतिपादन करने वाले वचनों का त्याग करना। प्रयोजन होने पर उचित, सत्य, तथ्य, पथ्य, निर्दोष तथा परिमित वचनों का उच्चारण करना। प्रयोजन न होने पर मौन धारण करना वचन गुप्ति है। वचन गुप्ति का पालन करने से आत्मा सहज हो अनेक प्रकार के दोषों से बच जाती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(8) कायगुप्ति- संरंभ, समारंभ और आरंभ से काया को निवृत्त करके, उसे तप, संयम, ज्ञानोपार्जन आदि संवर और निर्जरा के कार्यों में लगाना कायगुप्ति है।

उपर्युक्त प्रकार से पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ मिलाने से चारित्र के आठ आचार कहे गये हैं।

4. तपाचार-

कर्मरूपी मैल को नष्ट करने की, जैसी शक्ति तप में है, वैसी किसी अन्य में नहीं है। जैसे अशुद्ध सोना भी अग्नि में तपाने से कुन्दन हो जाता है, वैसे ही तप रूप महाअग्नि में अशुद्ध आत्मा तप कर परमात्मा हो जाता है। तप के बारह आचार हैं। इनमें छह बाह्य तप एवं छह आभ्यन्तर तप हैं-

बाह्य तप के आचार- (1) अनशन, (2) ऊनोदरी, (3) भिक्षाचर्या, (4) रसपरित्याग, (5) कायाक्लेश और (6) प्रतिसंलीनता (कर्म के आस्रव के कारणों का निरोध करना)।

आभ्यन्तर तप के आचार- (1) प्रायश्चित्त, (2) विनय, (3) वैयावृत्त्य (सेवा), (4) स्वाध्याय, (5) ध्यान और (6) कायोत्सर्ग (छोड़ने योग्य वस्तुओं को छोड़कर काया से ममत्व हटाकर समाधिस्थ होना)।

उपर्युक्त प्रकार से तप के कुल बारह तपाचार कहे गए हैं।

5. वीर्याचार-

अपनी शक्ति का गोपन न करते हुए धर्म कार्यों में यथाशक्ति मन, वचन एवं काया द्वारा प्रवृत्ति करना वीर्याचार है। इसके पाँच प्रकार हैं- (1) उत्थान, (2) बल, (3) वीर्य, (4) पुरुषकार एवं (5) पराक्रम।

धर्माचार्य इन पंचाचारों से स्वयं धर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा दूसरों को भी पालन कराते हैं।

पंचाचार-पालक-आदर्श आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.

आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज वर्तमान युग में रत्नत्रय के उत्कृष्ट आराधक, शासन प्रभावक, समर्थ आचार्य हुए हैं, जो पंचाचार का विशुद्ध पालन स्वयं करते थे व अपने संघ के सभी संत-सतियों के द्वारा पालना का विशेष ध्यान रखते थे। आपके सम्पर्क में आने वाले अन्य संत-सतियों को भी इनकी पालना में सावधान रहने की प्रेरणा देते रहते थे। इन पंचाचारों की उत्तम पालना की, उनसे संबधित पाँच प्रेरक घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं।

(1) **ज्ञानाचार विषयक-** आप आगमज्ञान के गहन अध्येता ही नहीं थे, वरन् उसे उन्होंने जीवन में भी धारण किया था। इस कारण आपके जीवन में उत्तम ज्ञान-क्रिया का अद्भुत संगम देखने को मिलता था। एक बार आप टोंक से जयपुर जाते निवाई में विराजे। कुछ अस्वस्थ होने से वहाँ विश्राम करने लगे। तभी मेरे द्वारा कुछ जिज्ञासाएँ, आपके साथ रहे सन्तों से पूछी जा रही थी। एक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा पूछी गई, कि अणगार भगवंतों में कृष्ण लेश्या कैसे मिलती है? जिज्ञासा सुनकर आप तत्काल उठे और कक्ष से बाहर आकर उक्त जिज्ञासा का सटीक उत्तर फरमाया, जिसे सुनकर सभी प्रमुदित हो पाए।

(2) **दर्शनाचार विषयक-** एक बार महाराष्ट्र में सतारा नगरी की ओर आपका विहार चल रहा था। वहाँ मार्ग में एक स्थान पर, कुछ व्यक्ति हाथों में लाठियां लेकर खड़े थे। आचार्य श्री ने उन लोगों को इस तरह खड़ा देखकर, पूछा कि आप लाठियाँ लेकर कैसे खड़े हैं? तब एक व्यक्ति ने कहा- महाराज, इस झोंपड़ी में एक विषधर सर्प घुस गया है, उसे मारने के लिये खड़े हैं। इस पर आचार्य श्री ने, उन्हें सर्प को नहीं मारने को कहा। तब वे बोले, यदि आपको यह सर्प प्यारा है तो साथ लेते जावें। इस पर आचार्य श्री झोंपड़ी की तरह निर्भीकतापूर्वक आगे बढ़े। सर्प को कहा-''यदि जीवित रहना चाहते हो तो मेरे ओघे में आ जाओ।'' जैसे ही उन्होंने ओघा आगे बढ़ाया सर्प उसमें आ गया। आचार्यप्रवर ने उसे सुदूर जंगल में सुरक्षित स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया। यह आचार्य श्री की धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा एवं दर्शनाचार की शुद्ध पालना का उदाहरण है।

(3) **चारित्राचार विषयक-** आपको आचार विषयक तनिक भी शिथिलाचार पसंद नहीं था। आप बीकानेरी मिश्री के समान थे। चारित्राचार की पालना करने वालों के लिए शक्कर से भी अधिक मिश्री की तरह मीठे थे तो आचार में दोष लगाने वाले संत-सतियों के लिए उन्हें सुधारने हेतु, दण्डित करने में मिश्री के समान कठोर भी थे। एक बार आपके संघ में रहे एक वरिष्ठ संत को, क्रिया में शिथिल एवं दोष लगाते देखा, तो उन्हें यथायोग्य भोलावणा दे प्रायश्चित्त दे, आगे निर्दोष संयम पालने को पाबंद किया। किंतु वे पुनः श्रमणाचार में दोष लगाने लगे। इस पर आचार्य श्री ने उनमें सुधार न देख उन्हें संघ से निष्कासित कर दिया। चारित्राचार की पालना करने-कराने का यह एक आदर्श उदाहरण है।

(4) **तपाचार विषयक-** आप अंखड बाल ब्रह्मचारी तपस्वी और ध्यान सिद्ध योगी थे। आपकी योगसाधना अद्भुत थी। जो भी आपके सम्पर्क में आता, आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। आप देर रात्रि तक ध्यान करते और अत्यल्प निद्रा ले पुनः ध्यान-साधना में रत हो जाते थे। आप नित्य रात्रि में नंदीसूत्र का स्वाध्याय किए बिना शयन नहीं करते थे। एक बार आपके ज्ञान-ध्यान से प्रभावित होकर टोंक निवासी सज्जन श्री बहादुर मल जी दासोत (जो मूर्तिपूजक संघ के प्रमुख थे) आपसे मंगलिक लेने हेतु लाल भवन, जयपुर में रात्रि के लगभग ग्यारह बजे पहुँचे। उस समय आचार्य श्री को ध्यानमुद्रा में बैठे देख वे चकित रह गए। वे पुनः एक बार प्रातः चार बजे लाल भवन पहुँचे, तो उस समय भी उन्हें पाटे पर ध्यान मुद्रा में बैठे देखा, तो विस्मित हो कह उठे, यह तो योगी नहीं महायोगी है जिसे रात्रि में भी जब देखा तब ध्यान में लीन पाया। वे आपकी इस ध्यान-साधना के तपाचार से प्रभावित हो आपके अनन्य श्रद्धालु भक्त हो गए। आपका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश समय आगमों के स्वाध्याय में व्यतीत होता था। सभी तपों में 'स्वाध्याय' का स्थान सर्वोपरि है। कहा है- 'न वि अत्थि, न वि होहि, सज्झायसमं तवो कम्मं।' अर्थात् स्वाध्याय के समान न तो कोई तप है और न होगा। अखिल भारतीय स्तर पर स्वाध्याय संघ की स्थापना आपकी प्रेरणा से हुई। इसके परिणाम स्वरूप आज आगमों के जानकर हजारों स्वाध्यायी तैयार हुए हैं जो भारत में ही नहीं विश्व के दूरस्थ स्थानों पर जाकर भी धर्म प्रचार कर रहे हैं। तपाचार में, तप के बारह प्रकारों में अंतिम तीन जो सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट हैं, वे हैं- स्वाध्याय, ध्यान एवं कायोत्सर्ग (व्युत्सर्ग)। आपके जीवन में इन तीनों की विशेष पालना देखने को मिलती थी। इस प्रकार आपका तपोमय जीवन तपाचार का एक श्रेष्ठ ज्वलन्त उदाहरण रहा है।

(5) **वीर्याचार विषयक-** जैसे सर्वार्थसिद्ध के देव अवगाहना में एवं आकृति में छोटे होकर भी महाऋद्धि, महापराक्रमी, महातेजस्वी और शान्ति वाले होते हैं, वैसे ही आचार्य श्री शरीर, कद एवं आकृति में लघु होते हुए भी, महातेजस्वी, महापराक्रमी, अप्रमत्त और आत्मशक्ति के महापुञ्ज थे। आप अपनी विशिष्ट शक्तियों का गोपन किये हुए साधनारत रहते थे। आपने अध्यात्म-क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए, जो आपके महान् बल, वीर्य, पुरुषकार एवं पराक्रम के प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ जैन धर्म का मौलिक इतिहास विस्तृत चार भागों में व्यवस्थित एवं प्रामाणिक रीति से तैयार हुआ। अखिल भारतीय स्तर पर सामायिक एवं स्वाध्याय संघ गठित हुए।

'मुणिणो सया जागरंति' वाक्य के अनुसार आप सदा जागृत एवं अप्रमत्त दशा में साधनारत रहते थे। परिणामतः अंतिम समय में देह-त्याग का समय निकट जानकर अपने वीर्याचार के अपूर्व विनियोग से जागृत दशा में प्रथम अष्टम भक्त (तेले) की तपस्या ग्रहण कर तपस्या में बढ़ते हुए संलेखना, संथारा और पंडित मरण का वरण कर सदा के लिए अमर हो गए। वीर्याचार की पालना का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार आचार्य श्री हस्तिमल जी म.सा. पंचाचार के न केवल दृढ़ पालक थे, वरन् वे इस युग के एक महान शासन प्रभावक आचार्य थे, जिनकी यश-कीर्ति युगों-युगों तक अमर रहेगी।

अंत में यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि वैसे तो इन पंचाचारों की पालना का संबंध आचार्य के छत्तीस गुणों में होने से मुख्यतया उनसे संबंधित है, किन्तु इनकी पालना सभी श्रमणों के लिए, चाहे वे उपाध्याय हों, प्रवर्त्तक हों या सामान्य साधु-साध्वी हों, परमावश्यक है। बिना इनकी पालना किए, श्रमण-जीवन में शुद्धाचारी रहना कथमपि संभव नहीं है। जैसे क्रिया के बिना ज्ञान, करणी के बिना कथनी तथा उपयोग (जयणा) के बिना धर्म का महत्त्व नहीं, वैसे ही इन पंचाचारों की पालना के बिना श्रमण-जीवन सार्थक नहीं है। अतः सभी संयमी साधकों को इनकी पालना कर सदा तत्पर रहना चाहिए।

-डागा सदन, संघपुरा, टोंक-304001 (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org